जैनेन्द्र का कहानीकार–रूप

डॉ. कुमार धनंजय सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग) पटना वीमेंस कॉलेज (ऑटोनोमस) पटना विश्वविद्यालय
ई–मेल : kumardhananjay007@gmail.com

प्रेमचंद के बाद हिंदी कथा–परिदृश्य में जो दो महत्त्वपूर्ण नाम उभरकर सामने आते हैं वह हैं – यशपाल और जैनेन्द्र। इन दोनों कहानीकारों ने प्रेमचंदोत्तर कथा–साहित्य को नई दशा और दिशा देने की कोशिश की। इन दोनों कहानीकारों के लिए अनुभूति से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है – विचार। यशपाल जहाँ विचार को सिद्ध करने के लिए घटनाओं को जन्म देते थे एवं तर्कशीलता की प्रवृत्ति अपनाते थे वहीं जैनेन्द्र विचार के सूत्र लेकर घटनाओं की सृष्टि नहीं करते बल्कि व्यक्ति के भाव की कहानी लिखते हैं। जैनेन्द्र के लिए सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है– पात्रों का मानसिक यथार्थ।

जैनेन्द्र का पहला कहानी–संग्रह 'फाँसी' 1929 ई. में प्रकाशित होता है। यह वह समय है जब प्रेमचंद भी कहानी–लेखन में सक्रिय थे। जैनेन्द्र की कहानी–कला का विकास प्रेमचंद के सानिध्य में ही शुरू होता है। प्रेमचंद की यह ख़ासियत है कि वे जैनेन्द्र की रचनात्मक–प्रतिभा को अपने ढंग से विकसित होने देते हैं, उनकी रचना–प्रक्रिया को स्वयं की तरफ़ मोड़ने की कोशिश नहीं करते। उस समय जबकि संपूर्ण हिंदी कहानी–जगत प्रेमचंद के आस–पास ही केन्द्रित हो गया हो, प्रेमचंद के सानिध्य में ही रहकर प्रेमचंद से इतर भाव–भूमि तलाश करना और उस भाव–भूमि पर कहानी लिखना कोई हँसी–खेल नहीं था। जैनेन्द्र की इस बात के लिए प्रशंसा की जानी चाहिए कि वे प्रेमचंद के सानिध्य में रहकर भी उनसे अलग अपनी राह बनाते हैं और उस पर चलने की कोशिश करते हैं।

जैनेन्द्र की कहानियाँ, प्रेमचंद की कहानियों से अलग क्यों हैं– इस प्रश्न का जवाब ढूँढ़ने के लिए हमें यह देखना होगा कि जैनेन्द्र की कहानियाँ रचने की प्रविधि आखिर क्या है ? जैनेन्द्र के बारे में यह मशहूर है कि वे कहानियाँ बनाते नहीं थे बल्कि उनसे कहानियाँ बन जाया करती थीं। उन्होंने लिखा भी है कि, "कहानियाँ मैंने लिखी ज़रूर हैं और अब भी लिख लेता हूँ लेकिन कला वगैरह का मुझे पता नहीं है। ...लिखने के पहले दिन से आज तक मैं कहता आ रहा हूँ कि मैं नहीं जानता हूँ।"[1] इसके विपरीत प्रेमचंद कहानी–कला के जानकार थे व एक निश्चित उद्देश्य के साथ कहानी–रचना किया करते थे। प्रेमचंद के यहाँ सामाजिक–उद्घाटन पर विशेष बल था इसीलिए उनके पात्र किसी–न–किसी वर्ग के प्रतिनिधि–चरित्र जान पड़ते हैं जबकि जैनेन्द्र के यहाँ महत्त्वपूर्ण हैं मानसिक–यथार्थ का उद्घाटन और इसीलिए उनके पात्र कोई टाइप या प्रतिनिधि मालूम न होकर एक सहज मानव प्रतीत होते हैं। प्रेमचंद और जैनेन्द्र के बीच दूसरा महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि प्रेमचंद जहाँ योजनाबद्ध होकर कहानी–रचना करते हैं वहीं जैनेन्द्र में योजना का अभाव मिलता है। वे कहानी के पात्र को कहानी के माहौल में विचारों के सहारे स्वयं विकसित होने का मौका देते हैं, यहाँ कहानीकार की व्यक्तिगत इच्छा तिरोहित हो जाती है। इसीलिए अक़्सर जैनेन्द्र कहानियों को जहाँ पहुँचाना चाहते हैं वहाँ नहीं पहुँचा पाते, कहानी का आंतरिक अनुरोध कहानी को स्वयं परिणति तक पहुँचा देता है। यही जैनेन्द्र की रचना–प्रक्रिया है। एक अन्य अंतर प्रेमचंद और जैनेन्द्र में यह भी है कि प्रेमचंद की कहानियों का यथार्थ उनके आस–पास के वास्तविक जीवन का ही यथार्थ है जबकि जैनेन्द्र यथार्थ–निरूपण में घटनाओं के बजाय सूक्ष्म संवेदनाओं और विचारों का सहारा लेते हैं। शायद इसीलिए प्रेमचंद के अनुरोध पर भी जैनेन्द्र अपने रिश्तेदारों पर उपन्यास नहीं लिख पाते लेकिन अपने अनेक उपन्यासों में रिश्तों की व्याख्या करते नजर आते हैं। रिश्तेदारों पर लिखने में घटना–बाहुल्यता का ख़तरा था जबकि रिश्तों की व्याख्या करने में विचारों को नई अर्थ–दीप्ति मिलती है। प्रेमचंद और जैनेन्द्र में अंतर केवल अंतर्वस्तु या कथा–दृष्टि को ही लेकर नहीं है, जैनेन्द्र की सफलता यह है कि वे अपनी कथा–यात्रा में नई कथा–भाषा के निर्माण में सफलता प्राप्त करते हैं | मैनेजर पाण्डेय इस तरफ संकेत करते हुए लिखते हैं कि, "जैनेन्द्र कुमार ने जब कथा–लेखन आरम्भ किया था तब प्रेमचंद अपनी ख्याति और लोकप्रियता के शिखर पर थे, वे हिंदी कथा–लेखन के मानदंड बन चुके थे | ऐसी स्थिति में प्रायः नए लेखक पुराने लेखकों की बनाई रचनात्मक राह पर चलते हैं, यह सुविधाजनक तो होता है, पर सार्थक नहीं | जैनेन्द्र कुमार भी यदि प्रेमचंद की कथा–दृष्टि का अनुसरण करते हुए

उपन्यास और कहानी लिखते तो वे न तो मौलिक होते न महत्वपूर्ण ही | इसीलिए उन्होंने प्रेमचंद से स्वतंत्र कथा–रचना की और नई कथा–भाषा भी निर्मित की |"[2] जैनेन्द्र के अध्येताओं को इस तरफ ध्यान देना चाहिए कि इन्होंने जिस कथा–भाषा की सृष्टि की उसकी मौलिकता क्या थी , जो इन्हें अन्य रचनाकारों से विशिष्ट बनाती है | जैनेन्द्र जी के सम्पूर्ण रचना–कर्म को ध्यान से देखें तो हम यह पाते हैं कि उनकी भाषिक–भंगिमा पर उनकी खास दार्शनिक–चेतना का प्रभाव है , यह बात उन्हें अन्य समकालीनों से भिन्न कर देती है | आलोचकों ने उनकी विशिष्ट कथा–भाषा को 'जैनेंद्रीय अंदाज' कहा है | मैनेजर पाण्डेय जी जैनेन्द्र की भाषा–सम्बन्धी विशेषताओं को और उद्घाटित करते हुए बताते हैं, "हिंदी उपन्यास को जैनेन्द्र कुमार की एक बड़ी देन है उनकी विशिष्ट कथा–भाषा , जो न केवल प्रेमचंद की भाषा की लोकोन्मुखता से भिन्न है, बल्कि अज्ञेय की अभिजात भाषा और यशपाल की अभिधात्मक कथा–भाषा से भी अलग है | जैनेन्द्र एक दार्शनिक कथाकार हैं , इसीलिए उनकी भाषा में दार्शनिक संकेत और इशारे भी हैं | उस भाषा में कहीं अनेकान्तवाद की झलक है तो कहीं स्यादवाद की | कहीं–कहीं गाँधी की अमूर्तनवादी सूत्र–शैली भी उनकी भाषा में है, वहां न भाषा का फैलाव है, न शब्दों की फिजूलखर्ची और न विशेषणों की भरमार |"[3] जैनेन्द्र जी की भाषा की यह विशेषता उनके उपन्यासों में भी देखी जा सकती है और कहानियों में भी |

जैनेन्द्र की कहानी–यात्रा का आद्योपांत अध्ययन करने के पश्चात् एक बात स्पष्ट तौर पर परिलक्षित होती है कि जैनेन्द्र की शुरूआती कहानियाँ जहाँ अनुभूतिपरक होती थीं वहीं वे बाद की कहानियों में तर्कजाल में उलझकर रह जाते हैं। जैनेन्द्र की प्रारंभिक कहानियों में 'फाँसी', 'स्पर्धा', 'खेल', 'पत्नी' आदि का नाम महत्त्वपूर्ण है। 'फाँसी' में जैनेन्द्र शमशेर और जुलैका की प्रेम कहानी के माध्यम से क्रांतिकारियों की समर्पण –भावना एवं भारतीय अधिकारियों की मानसिक दासता को उद्घाटित करते हैं। जुलैका की प्रेमानुभूति और मनोभावों के चित्रण में जैनेन्द्र के कहानीकार रूप की विशिष्टता उजागर होती है। 'स्पर्धा' कहानी में बेंजिलो और गिडिटो जैसे पात्रों के माध्यम से जैनेन्द्र अपने क्रांति और अहिंसा–संबंधी विचार को प्रस्तुत करते हैं।

जैनेन्द्र की शुरूआती दौर की सबसे महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं – 'खेल' और 'पत्नी'। 'खेल' कहानी में दो बच्चों के खेल के माध्यम से स्त्री और पुरुष की प्रकृति को सामने लाया गया है। 'खेल' में बालिका सुरबाला बालू की कुटी बनाकर सुन्दर सपने बुनती है जबकि मनोहर एक लात में उस कुटी को तोड़ देता है। सुरबाला व्यथित हो जाती है लेकिन मनोहर के ये कहने पर कि "मुझे मत देखो। मैं अब कभी सामने नहीं आऊँगा। मैं इसी लायक हूँ।" – उसकी व्यथा तुरंत ख़त्म हो जाती है और स्त्रियोचित उल्लास का जन्म होता है। फिर मनोहर द्वारा कुटी बनाने पर वह भी उसे तोड़ देती है और हँसती है। स्त्री के लिए जहाँ प्रमुख है अपने अहं का बदला लेना वहीं पुरुष स्त्री से नीचा दबकर भी अपने उदात्त चरित्र को दिखाता है। जैनेन्द्र ने बालू पर खेल के माध्यम से ही स्त्री और पुरुष की मानसिकता को बहुत बारीक़ी से दिखाने का प्रयास किया है। जैनेन्द्र उस कहानी में जीवन के सत्य को इतनी सहजता के साथ दिखाते हैं कि यहाँ पर विचार प्रधान नहीं लगता बल्कि विचार की सत्ता तिरोहित–सी होती प्रतीत होती है।

जैनेन्द्र के प्रारंभिक दौर की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है – 'पत्नी'। अपनी किताब 'कहानी : अनुभव और शिल्प' में जैनेन्द्र 'पत्नी' के निर्माण की दिलचस्प कथा कहते हैं। भगवतीचरण बोहरा जैसे क्रांतिकारी को केन्द्र में रखकर जैनेन्द्र एक क्रांतिकारी के परिवार की कथा कहना चाहते थे लेकिन कहानी का आंतरिक दबाव कहानी को 'पत्नी' जैसी कहानी बनने पर मजबूर कर देता है। क्रांति के पीछे एक स्त्री की संघर्ष–कथा कैसी है – इसे जैनेन्द्र 'पत्नी' कहानी के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। 'पत्नी' कहानी में आतंकवाद का विरोधी सत्याग्रही पति स्वयं अपनी पत्नी को आतंकित किए रहता है। वह अपनी पत्नी के भावनाओं की कद्र नहीं करता और उसके मूल्यों का महत्त्व नहीं समझता। पत्नी पति के किसी सवाल का जवाब नहीं देती और एक प्रकार का असहयोगात्मक रवैया अपनाती है। अंत में पति हार जाता है और पत्नी ही असली सत्याग्रही, गाँधीवादी चरित्र के रूप में उभरती है।

'पाजेब' और 'अपना–अपना भाग्य' जैसी कहानियों में भी हमें जैनेन्द्र का उत्कृष्ट कथाकार–रूप दिखाई पड़ता है। 'पाजेब' में जैनेन्द्र चोरी की घटना से मानसिक यथार्थ का उद्घाटन करते हैं। पाजेब के चोरी हो जाने के बाद अभिभावकों की प्रतिक्रिया एवं बच्चों पर उसका असर कैसे होता है– इसे जैनेन्द्र ने बड़ी शिद्दत से उभारा है। खासकर इस बिन्दु पर बाल–मनोविज्ञान का चित्रण करने में जैनेन्द्र बेजोड़ हैं। अंत में जब पाजेब का पता चलता है तो दर्शक चौंककर रह जाते हैं। यही नाटकीयता कहानी में कथा–रस की सृष्टि करता है। बाद की कहानियों में

इस तरह के तत्त्व परस्पर कम होते जाते हैं और इनकी कहानियाँ सामान्य पाठक से दूर होकर एक तर्कजाल–मात्र रह जाती हैं। 'पाजेब' कहानी में जैनेन्द्र मानसिक यथार्थ का उद्‌घाटन तो करते ही हैं साथ ही अपनी यह भी स्थापना रखते हैं कि 'अपराधी' बच्चे के साथ हमारा व्यवहार उदारतापूर्ण होना चाहिए। 'अपना–अपना भाग्य' कहानी में छद्‌म आभिजात्य को बेपर्दा किया गया है। दो दोस्त नैनीताल घूमने जाते हैं। उन्हें एक ग़रीब काम करने वाला बच्चा मिलता है। ये दोनों मित्र अच्छी हालत में होने के बावजूद गरीब बच्चे की सहायता नहीं करते हैं। अंततः वह बच्चा मर जाता है और ये दोनों उसे भाग्य का दोष बताते हैं। जैनेन्द्र पाठकों को यह सोचने के लिए प्रेरित करते हैं कि बच्चे की मृत्यु सिर्फ भाग्याधारित है या कुछ और।

जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में 'जाह्‌न्वी' और 'एक रात' का नाम लिया जा सकता है। 'जाह्‌न्वी' में जाह्‌वी, ब्रजनंदन को पत्र लिखकर शादी से इनकार करने की प्रार्थना करती है। इसमें जाह्‌न्वी का चरित्र पूरी तरह से क्रांतिकारी–चरित्र नहीं है क्योंकि वह शादी न करने की प्रार्थना करती है। यदि जाह्‌न्वी का चरित्र पूरे तौर पर क्रांतिकारी होता तो वह स्वयं शादी से इनकार कर देती। इसके बाद ब्रजनंदन का चरित्र एक मजबूत चरित्र के रूप में सामने आता है। वह जाह्‌न्वी की सत्यवादिता पर आकर्षित होता है, उससे प्रेम करने लगता है और प्रेम का सत्याग्रह करता है। हम जिसे चाहते हैं उसे छोड़कर हम किसी और के नहीं हो सकते – यही प्रेम का सत्याग्रह है और जैनेन्द्र इस कहानी के माध्यम से अपनी यही स्थापना रखना चाहते हैं। 'एक रात' जैनेन्द्र की लंबी कहानी है। अन्य कहानियों की तरह इसमें भी घटना की विरलता और विचारों का प्राधान्य है। जैनेन्द्र का अपना दर्शन है कि वे स्त्री की सार्थकता, स्त्री के समर्पण में ही मानते हैं। जैनेन्द्र की अन्य कहानियों और उपन्यासों में जहाँ पति–पत्नी के बीच समर्पण– असमर्पण का द्वंद्व चलता रहता है वहीं 'एक रात' की नायिका अपने आप को दूसरे की बांहों में समर्पित कर देती है। यहाँ पर समाज द्वारा निर्धारित नैतिकता और अनैतिकता का प्रश्न गौण हो जाता है और अपनी भावनाओं के प्रति ईमानदारी का प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण हो उठता है।

जैनेन्द्र की शुरूआती दौर की कहानियाँ ही ज़्यादा श्रेष्ठ मानी जानी चाहिए क्योंकि यहाँ पर कहानियों को अनुभूति के आधार पर स्वयं विकसित होने दिया गया है। ये कहानियाँ पाठकों को एक नए भावलोक में ले जाकर उद्वेलित करती हैं। जैनेन्द्र की इन कहानियों में कथानकों की न्यूनता है और चरित्रों के अंतर्संघर्षों को खोलने में उनकी जादुई भाषा ने भी महत्त्वपूर्ण भमिका अदा की है। रोजमर्रे की बातचीत से जो अनायास भाषा–शैली उत्पन्न होती है, जैनेन्द्र अपनी कहानियों मे उसी भाषा–शैली का उपयोग करते हैं। कम से कम शब्दों में गहरे अर्थ की व्यंजना वाली बोलचाल की भाषा का प्रयोग करना ही जैनेन्द्र की अभूतपूर्व विशेषता है। 'अपना–अपना भाग्य' कहानी में जब दोनों दोस्तों और गरीब लड़के के बीच संवाद हो रहा होता है तो जैनेन्द्र छोटे–छोटे सहज संवादों के द्वारा पाठक के सामने एक चित्र–सा प्रस्तुत कर देते हैं। जैनेन्द्र ऐसी ही सहज भाषा के द्वारा पाठक के सामने अपने विचारों को व्याख्यायित करने का काम करते हैं।

जैनेन्द्र अपने बाद की कहानियों में विचारों और तर्कजाल में उलझते चले जाते हैं। जैनेन्द्र के साथ दिक्कत यह थी कि वे वास्तविक और यथार्थपरक जीवन की अपेक्षा अवास्तविक और अमूर्त जगत में गहरी दिलचस्पी रखते थे। इसी के परिणामस्वरूप जैनेन्द्र वास्तविक जीवन से क्रमशः दूर होते चले जाते हैं। जैनेन्द्र जिसे अपनी प्रतीकात्मक कहानी कहते हैं, जैसे– 'लाल सरोवर', 'तत्सत्', 'नीलम देश की राजकन्या' आदि उसमें यथार्थ जगत से दूर भागकर अवास्तविक जगत में घुसने की कोशिश की गई है। इन कहानियों में विचारों को सीधे–सीधे यथार्थरूप में अभिव्यक्त न करके या तो पशु–पक्षियों के माध्यम से कथा कही गई है या प्रतीकात्मक ढंग से। अपनी इन कहानियों में जैनेन्द्र विचार ओर दर्शन के चक्कर में इतनी बुरी तरह उलझ जाते हैं कि यदि आप 'स्यादवाद' को नहीं जानते हैं तो किसी भी तरह आपसे 'नीलम देश की राजकन्या' जैसी कहानी की व्याख्या नहीं हो सकती है। जैनेन्द्र की इसी प्रवृत्ति पर चोट करते हुए मार्कण्डेय लिखते हैं, "अमूर्त सच्चाईयों को वाणी देने के लिए – उसे एक रूप देकर अधिक सहज और सम्यक बनाने के लिए उन्होंने अपनी निर्माण–प्रतिभा का उपयोग किया होता तब शायद 'नीलम का द्वीप' हमारा भी नगर होता।"[4] पहले की कहानियों में जैनेन्द्र जहाँ विचार के सूत्र लेकर उसके आगे–पीछे घटनाओं को जोड़ा करते थे वहीं बाद में चलकर वे घटनाओं को पूरी तरह गौण कर देते हैं और फैण्टेसी एवं रूपक कथाओं का जाल फैलाने लगते हैं। उनकी कहानी 'तत्सत्' बाद के दिनों की कहानी है जो दार्शनिक ढंग से प्रतिष्ठित की गई है। यह आत्मा और परमात्मा के संबंधों की कहानी है। पंचतंत्र पैटर्न में लिखी गई इस कहानी के द्वारा कहानीकार ने यह स्थापना रखी है कि यदि हम अपने–आप से ऊपर उठकर विराट को दखते हैं, तब ही हमें उस विराट की सत्ता दिखाई पड़ती है। ऐसी कहानियों में फैण्टेसी का ऐसा उपयोग किया

गया है कि कहानियों की सहजता गायब हो गई है। ऐसी कहानियों के साथ दिक्कत यह है कि जब तक आपके साथ सुशिक्षित अध्यापक न हों ऐसी कहानियाँ आपको समझ में ही नहीं आएँगी। जैनेन्द्र के कथाकार–रूप में जो उत्तरोत्तर ह्रास हुआ है वह 'बाहुबली' और 'समाप्ति' जैसी कहानियों के माध्यम से समझा जा सकता है। 'बाहुबली', 'समाप्ति' से सत्रह साल पहले लिखी गई कहानी है। 'बाहुबली' में भी विचार के सूत्र हैं लेकिन जैनेन्द्र 'बाहुबली' में विचार को घटनाओं के माध्यम से सत्यापित करने की कोशिश करते हैं। जबकि 'समाप्ति' में घटनाएँ पूरी तरह समाप्त हो जाती हैं। घटनाओं के बदले हमें वहाँ पर मिलता है विचारों का तर्कजाल और निरर्थक बहस। 'समाप्ति' में कहानी जैसा तत्त्व विचारों की भूमि के नीचे गायब जान पड़ता है। जैनेन्द्र के विचारों को निर्मला जैन इस रूप में लिखती हैं : "कहानी तब बनती है जब घटना घटती नहीं बल्कि किसी घटना में मोड़ आता है। बस इसी मोड़ पर नज़र टिकाकर जैनेन्द्र उसका मनोवैज्ञानिक कारण ढूँढ़ते हैं। उसके आगे–पीछे की घटनाओं की कल्पना करते हैं और उसी बिन्दु पर टिका कर कहानी बुन देते हैं।"[5] लेकिन अंत तक आते–आते जैनेन्द्र अपनी उस प्रवृत्ति को भी छोड़ देते हैं। वे विचारों के आगे–पीछे घटनाओं के सूत्र नहीं लगाते बल्कि विचारों से एक फैण्टेसी खड़ा कर पाठकों को माथापच्ची करने के लिए छोड़ देते हैं।

यदि जैनेन्द्र की पूरी कथा–यात्रा की समग्रतः आलोचना की जाए तो हम यह पाते हैं कि जैनेन्द्र का उदय, प्रेमचंद के बाद के कथा–साहित्य पर एक बहुत बड़ी संभावना के साथ हुआ था। जैनेन्द्र ने प्रेमचंद के दिशा–निर्देशन में ही एक नई भाव–भूमि तैयार की और प्रेमचंद से बिल्कुल अलग दिशा में अपनी कहानी–यात्रा प्रारंभ की। प्रेमचंद के बरअक्स वे सामाजिक यथार्थ पर बल न देकर मानसिक यथार्थ पर बल दते हैं। 'खेल', 'पत्नी', 'जाह्नवी', 'अपना–अपना भाग्य' जैसी कहानियों में वे विचार के तंतुओं के इर्द–गिर्द घटनाओं का निर्माण करते हैं और उन घटनाओं के माध्यम से ही अपने विचारों को स्थापित करने का कार्य करते हैं। इनकी शुरूआती कहानियों में हमें इनका दर्शन सहजता से प्रतिबिम्बित होता मालूम पड़ता है। लेकिन बाद की कहानियों में जैसे, 'नीलम देश की राजकन्या', 'तत्सत्' आदि में इन्होंने घटनाओं को बिल्कुल न्यूनीकृत कर दिया है। यह माना जा सकता है कि बाद के समय में विचारक जैनेन्द्र, कहानीकार जैनेन्द्र पर पूरी तरह हावी हो चुके हैं। इन्होंने अपने विचारों के प्रतिस्थापन के लिए बाद में पूरी तरह से फैंटेसी और रूपक कथाओं का उपयोग किया है। इनकी यही प्रवृत्ति बाद में इनकी कहानियों को सामान्य पाठक से दूर करके सिर्फ विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में कैद करके रख देती है। हिंदी कथा–परिदृश्य में जैनेन्द्र का उदय तो बहुत बड़ी संभावनाओं के साथ हुआ था लेकिन अपने लेखन की उत्तरकालीन अवस्था में जैनेन्द्र निराश करते प्रतीत होते हैं।

संदर्भ

1. कहानी : अनुभव और शिल्प, जैनेन्द्र कुमार, अक्षय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982, पृ. 5
2. मैनेजर पाण्डेय : संकलित निबंध, मैनेजर पाण्डेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पहला संस्करण, 2008, पृष्ठ– 130
3. मैनेजर पाण्डेय : संकलित निबंध, मैनेजर पाण्डेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पहला संस्करण, 2008, पृष्ठ– 135
4. नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति, देवीशंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1973, पृ. 37
5. कथाप्रसंग – यथाप्रसंग, निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 55